International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 15 Issue 9, September 2025,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081 **UGC Approved Journal Number: 48887**
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

पतंजलि योग सूत्र में वर्णित साधक-बाधक तत्व का एक विवेचनात्मक अध्ययन।

1) सौम्या, पीएचडी स्कॉलर, एसबीयू, रांची, झारखण्ड
2) डॉ नीलिमा पाठक, डीन, एसबीयू, रांची, झारखण्ड
3) डॉ अर्चना मौर्य, सहायक प्रोफेसर, एसबीयू, रांची, झारखण्ड
4) मोहित कुमार, संज्ञाहरण विभाग, आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान संस्थान, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश
5) नंद प्रकाश, पीएचडी स्कॉलर, एसबीयू, रांची, झारखण्ड

अमूर्तः

पतंजलि योग सूत्र, योग दर्शन का मूल ग्रंथ है, जिसमें योग के आठ अंगों (अष्टांग योग) के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया समझाई गई है। इस ग्रंथ में योगाभ्यास के लिए आवश्यक साधक तत्वों (सहायक गुणों) तथा बाधक तत्वों (विघ्न डालने वाले तत्वों) का वर्णन मिलता है। यह शोध-पत्र इन दोनों प्रकार के तत्वों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

प्रस्तावनाः

योग साधना एक ऐसी साधना पद्धति है जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति करते हुये अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है, परन्तु योग साधना का मार्ग विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों से भरा हुआ है अतः साधक को साधना प्रारम्भकरने से पूर्व साधना में आने वाली बाधाओं व उनसे भयभीत न होने का ज्ञान होना आवश्यक है। महर्षि पतंजलि के अनुसार-

"**योगश्चित्त वृत्ति निरोधः**" ।। 1/2 पं.यो.सू.

यह योग का मूल और सार है। इसका अर्थ है कि चित्त की वृत्तियों का सर्वथा रुक जाना ही योग है। 'वृत्तियाँ' तीन प्रकार की मानी गई हैं -सात्विक, राजसिक, और तामसिक। इन में विशेष रूप से तामसिक वृत्तियों (जैसे आलस्य, मोह, भ्रम) के निरोध को योग का महत्वपूर्ण उद्देश्य माना गया है।यदि साधक के भीतर साधना के प्रति दृढ़ संकल्प और निष्ठा हो, तो चित्त स्वतः ही एकाग्र और स्थिर होने लगता है। किंतु कई बार ऐसा होता है कि साधना के मार्ग में आने वाली बाधाएँ (विघ्न) साधक को विचलित करने लगती हैं। ये विघ्न या विक्षेप भी चित्त की वृत्तियों के साथ ही उत्पन्न होते हैं और मन को एकाग्र होने से रोकते हैं। किन्तु जब साधक साधना में लीन हो जाता है, और अपने लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित रखता है, तब ये बाधक तत्व स्वतः ही पीछे हटने लगते हैं। इन विघ्नों की उपेक्षा कर निरंतर अभ्यास करने वाला ही सच्चे अर्थों में योगी कहलाता है।

जो तत्व योग साधना में योगी को सहायता करते है वे साधना के साधक तत्व कहलाते है तथा जो तत्व साधना के क्षेत्र में बाधा पहुँचाने वाले होते हैं वे बाधक तत्व कहलाते हैं।

पतंजलि के योगसूत्र में साधक-बाधक तत्त्वों का प्रमुख प्रस्थान है। पतंजलि ने 'समाधि पाद' में साधक के प्रकृति, पुरुष, प्रकृति-पुरुष के संसार में प्रक्रिया के महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला है। 'साधना पाद' में साधक के मन की स्थिरता, प्रतिभा, प्रेम, करुणा, मुदिता, उपेक्षा की महत्वपूर्णता पर प्रकाश डाली है। ऋषि पतंजलि से संबंधित, योग सूत्र मानव मन और आध्यात्मिक अभ्यास के साथ उसके संबंध को समझने के लिए एक व्यवस्थित रूपरेखा प्रदान करते हैं। सूत्र चित्त वृत्ति निरोध (मन के उतार-चढ़ाव को रोकना) की अवधारणा को चित्रित करते हैं और विभिन्न साधक और बाधक तत्वों की पहचान करते हैं जो योग में अभ्यासकर्ता की प्रगति को प्रभावित करते हैं। पतंजलि का अंतराय (बाधाओं) का वर्गीकरण उन निरोधात्मक कारकों पर प्रकाश डालता है जो किसी के आध्यात्मिक विकास में बाधा डालते हैं, जबकि क्रिया योग की अवधारणा उन सहायक तत्वों पर जोर देती है जो आंतरिक परिवर्तन की सुविधा प्रदान करते हैं। पतंजलि के योग सूत्र जैसे दार्शनिक ग्रंथों में, क्लेश (कष्ट) और क्रिया योग (क्रिया का मार्ग) की अवधारणा उन कारकों को चित्रित करती है जो

व्यक्तियों को बांधते हैं और जो उन्हें मुक्त करते हैं। इसी प्रकार, अद्वैत वेदांत में, विवेक (भेदभाव) और वैराग्य (वैराग्य) की धारणा को आध्यात्मिक प्रगति के लिए आवश्यक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

योग सूत्र के अनुसार बाधक तत्व-

महर्षि पतजंलि के अनुसार रज व तम गुण के कारण नौ ऐसे बाधक तत्व हैं जो साधक के चित्त में विक्षेप उत्पन्न करते है व उसको साधना से विचलित करते हैं। इसको योग साधना में विघ्न, अन्तराय, बाधक तत्व, योग विक्षेप, योगमल और चित्त विक्षेप भी कहते हैं।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति ।
भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।। 1/30 पं.यो.सू.

अर्थात व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनअवस्थितत्व ये नौ चित्त में होने वाले विक्षेप है जो साधक को योग मार्ग में बाधा पहुंचाते है।

1) व्याधि - (रोग शरीर में सात धातुओं) अर्थात रस व इन्द्रियों की विषमता ही व्याधि है।शारीरिक रोग या बीमारी साधना में सबसे पहली और स्पष्ट बाधा है। जब शरीर अस्वस्थ होता है, तो साधक का ध्यान योग की ओर नहीं जा पाता।
2) स्त्यान-(चित्त की अकर्मण्यता) अर्थात् यह मन की उस स्थिति को दर्शाता है जिसमें इच्छा होते हुए भी साधक कार्य के लिए प्रेरित नहीं हो पाता। उत्साहहीनता, मन का थका हुआ या भारी होना।
3) संशय- (दो विरुध ज्ञान का बने रहना) अर्थात् जब साधक पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण दो वस्तुओं के अन्तर को नहीं समझ पाता। दोनों में सहीं निर्णय नहीं ले पाता तो वह अपने प्रयत्न की सफलता पर आशंका करने लगता हैं यहीं विक्षेप संशय कहलाता हैं।
4) प्रमाद- (कार्य को समय न देना) अर्थात् समाधि के साधनों में उत्साह पूर्वक प्रवृत्ति न होना प्रमाद कहलाता है। समाधि का अभ्यास प्रारम्भ कर देने पर उसमें वैसा ही उत्साह और दृढता निरन्तर बनी रहनी चाहिए जैसा उत्साह प्रारम्भ में था। प्रायः युवावस्था का मद, धन और प्रभुत्व का दर्प आदि साधक के उत्साह को शिथिल कर देता है। अतः प्रमाद समाधि में अन्तराय है।
5) आलस्य- (तमस गुण के कारण शरीर व चित्त का भारीपन) अर्थात् शरीर और चित्त के भारी होने से समाधि के साधनों में प्रवृत्ति नहीं होती, इसी का नाम आलस्य है। प्रमाद और आलस्य में बहुत अन्तर है। प्रमाद प्रायः अविवेक से उत्पन्न होता है। आलस्य में अविवेक तो नहीं होता किन्तु गरिष्ठ भोजन के सेवन से शरीर और चित्त भारी हो जाता है। यह भी योग साधना मार्ग में अन्तराय कहलाता है।
6) अविरति- (अवैराग्य) अर्थात् जब चित्त की विषयों से जुड़ने की इच्छा होती हैं तब वह अविरति विक्षेप हैं।
7) भ्रान्तिदर्शन - (मिथ्याज्ञान) अर्थात् जब किन्हीं दो प्रकार के ज्ञान में मिथ्या धारणा या भ्रान्ति बनी रहती है, कि यह सही होगा या वह। तब यही विपरीत ज्ञान भ्रान्तिदर्शन विक्षेप हैं।
8) अलब्धभूमिकत्व - (समाधि भूमि का प्राप्त न होना) अर्थात् जब साधक साधना करते हुए अपना धैर्य खोने लगता है और लम्बे समय तक साधना करते करते उसे लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाता तब ईश्वर नहीं है ऐसा भाव उसके अन्दर आने लगता हैं यहीं अलब्धभूमिकत्व विक्षेप हैं।
9) अनवस्थितत्व- (प्राप्त समाधि भूमि में चित्त का स्थिर न होना) अर्थात् यदि किसी प्रकार भूमियों में से किसी एक की प्राप्ति हो जाये किन्तु उसमें निरन्तर चित्त की स्थिति न हो तो यह

अनवस्थितत्व कहलाता है।

इस प्रकार नौ चित्तविशेष योग के अन्तराय कहलाते है। इन्ही को चित्त का मल तथा योग प्रतिपक्ष भी कहा गया है। इन चित्तविक्षेपों के पाँच साथी भी है। जो इन अन्तरायों के होने पर स्वतः हो जाते है।

दुःख दौर्मनस्य अंगमेजयत्व स्वसप्रवासः विक्षेप सहभुवः।। 1/31 पं.यो.सू.

1 दुःख - तीन प्रकार के दुखों का वर्णनः

1) आध्यात्मिक दुःख - यह शारीरिक (शरीर से जुड़ा) और मानसिक (मन से जुड़ा) कष्ट होता है। जैसे रोग, चिंता, तनाव आदि।
2) आधिभौतिक दुःख यह दूसरे प्राणियों या मनुष्यों द्वारा उत्पन्न किया गया कष्ट है, जैसे हिंसा, अपमान, सामाजिक कष्ट आदि। "भौतिक" शब्द "भूत" यानी जीवों से संबंधित है।
3) आधिदैविक दुःख - ये प्राकृतिक/दैविक कारणों से उत्पन्न कष्ट हैं, जैसे अधिक वर्षा, अग्निकांड, बाढ़, तूफ़ान, भूकंप आदि। ये तीनों तत्त्व - अग्नि, जल, वायु - जीवन के लिए आवश्यक तो हैं, लेकिन असंतुलन होने पर यही दुःखदायी बन जाते हैं।

2 दौर्मनस्य –(मानसिक अशांति जब)अर्थात इच्छित वस्तु या लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती, अथवा प्रयास के बाद भी असफलता हाथ लगती है, तो मन में जो निराशा, खिन्नता या पीड़ा उत्पन्न होती है, उसे दौर्मनस्य कहते हैं। यह एक प्रकार का मानसिक विषाद है।

3 अंगमेजयत्व - (शरीर के अंगों में कंपन) अर्थात साधना के समय जब शरीर असहज हो जाए, हाथ-पैर काँपने लगें, स्थिरता न बनी रहे - तो यह शारीरिक बाधा अंगमेजयत्व कहलाती है। यह रोग या मानसिक अस्थिरता के कारण भी उत्पन्न होती है।

4 श्वास – (भीतर की ओर गति करने वाला प्राणवायु) अर्थात जब चित्त अस्थिर होता है तो प्राणवायु अनियमित हो जाती है। यह गहरी सांस लेना, बार-बार सांस खींचना आदि योग की एकाग्रता में रुकावट डालते हैं। यह सामान्य श्वास की गति समाधि के लिए विरोधी मानी जाती है।

5 प्रश्वास –(बाहर की ओर निकलने वाला प्राणवायु यह श्वास का निष्क्रमण है)अर्थात जब सांस का बहाव अधिक तीव्र या अनियमित हो जाता है, तो ध्यान व समाधि में बाधा उत्पन्न होती है। यह भी समाधि का प्रतिपक्षी (विरोधी) है।

योग सूत्र के अनुसार साधक तत्व-

महर्षि पंतजलि ने चित्त को निर्मल करने के अनेक उपाय बताये हैं जिनको उन्होंने चित्त शुद्धि के उपाय भी कहा है जो साधक को साधना करते समय साधक तत्व के रूप में सहायता करते हैं। ये निम्न प्रकार से हैं-

मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातः चित्त प्रसादनम् ।। 1/33 पं.यो.सू.

अर्थात साधक को साधना करते समय ये चार भावनायें रखनी चाहिए। ये मैत्री, करूणा, मुदिता व उपेक्षा है। महर्षि कहते हैं कि सुखी व्यक्ति के साथ मित्रता का भाव, दुःखी के साथ करूणा, पुण्यवान के प्रति मुदिता अर्थात प्रसन्नता का भाव व पापी के साथ उपेक्षा की भावना रखने से मन शांत हो जाता है।

1) मैत्री - (सुखी लोगों के प्रति मित्रता भाव) अर्थात जब कोई व्यक्ति सुखी हो, सफल हो, तो उससे ईर्ष्या या प्रतिस्पर्धा न रखकर, उसके प्रति मित्रता और शुभकामना का भाव रखें। इससे हमारे मन में शांति और सहयोग की भावना बनी रहती है।

2) करुणा- (दुःखी लोगों के प्रति दया) अर्थात् जो व्यक्ति दुःखी है, कष्ट में है उसके प्रति आलोचना या तटस्थता नहीं, बल्कि करुणा और सहानुभूति होनी चाहिए। इससे मन दयालु बनता है और चित्त को कोमलता प्राप्त होती है।
3) मुदिता- (पुण्यात्मा के प्रति आनंद/हर्ष) अर्थात् जब कोई व्यक्ति धर्मपरायण, पुण्यशील, अच्छे कर्म करता हुआ दिखाई दे, तो उसमें ईर्ष्या नहीं बल्कि हर्ष और प्रेरणा का भाव रखें। यह भावनात्मक परिपक्वता को दर्शाता है।
4) उपेक्षा- (दुष्ट या दोषी के प्रति तटस्थता) अर्थात् जो व्यक्ति अधर्मी, पापी या क्रूर है, उसके प्रति द्वेष या क्रोध करने की अपेक्षा एक तटस्थ दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यह 'उपेक्षा' कोई नफरत नहीं, बल्कि भावनात्मक निरपेक्षता है ताकि उसका आचरण हमारे चित्त को प्रभावित न करे।

निष्कर्षः

साधक-बाधक तत्व की अवधारणा, यौगिक अभ्यास में कारकों को सुविधाजनक बनाने और बाधित करने का सिद्धांत, विभिन्न यौगिक ग्रंथों में एक आवर्ती विषय है। पतंजलि योगसूत्र में योग की सिद्धि के लिए जिन साधक और बाधक तत्वों का वर्णन किया गया है, वे न केवल एक योगी के व्यक्तिगत अनुभवों का सार हैं, बल्कि साधना मार्ग के वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करते हैं। बाधक तत्व (जैसे व्याधि, आलस्य, संशय आदि) योग की प्रगति में अवरोध उत्पन्न करते हैं, जबकि साधक तत्व (जैसे अभ्यास, वैराग्य, श्रद्धा, मैत्री आदि) साधक को चित्तशुद्धि, एकाग्रता और अंततः समाधि की ओर ले जाते हैं। यह स्पष्ट होता है कि योग केवल आसनों या शारीरिक क्रियाओं का अभ्यास नहीं, बल्कि मानसिक और भावनात्मक शुद्धि की गहन प्रक्रिया है। यदि साधक इन बाधक तत्वों को पहचानकर, उपयुक्त साधक गुणों का विकास करता है, तो योग की उच्चतम अवस्था - चित्तवृत्ति निरोध और आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करना संभव है। अतः यह विवेचनात्मक अध्ययन हमें यह सिखाता है कि आत्मनियंत्रण, विवेक और सतत अभ्यास ही योग मार्ग की कुंजी हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- योग दर्शन-गीता प्रेस गोरखपुर
- पातंजल योग सूत्र-योग दर्शन-नन्द लाल दशोरा, रणधीर प्रकाशन हरिद्वार संस्करण-2009
- पातंजल योग दर्शन के आधारभूत तत्व-डॉ० इन्द्राणी-सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली (भारत), प्रथम संस्करण-2015
- सांख्य दर्शन एवं योग दर्शन आचार्य पं. श्रीराम शर्मा, युग निमार्ण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि मथुरा, उ० प्र० (2010)
- पातंजल योगदर्शन- आरण्य स्वामी हरिहरानन्द, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड़, दिल्ली, 1980
- श्रीमद्भगवद् गीता गीता प्रेस गोरखपुर
- योग प्रश्न संग्रह द्वितीय संस्करण आचार्य हरीश कुमार-महर्षि कणाद
- अकादमी, नजफगढ़, दिल्ली-110024
- अरिहन्त, एन टी०ए०, यू०जी०सी०, योग पेपर-2- नवीन संस्करण
- स्वस्थवृत्त विज्ञान प्रो० रामहर्ष सिंह चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू० ए० जवाहर नगर, बंगलो रोड, दिल्ली 110007
- अरिहन्त, एन टी०ए०, यू०जी०सी०, योग पेपर-2- नवीन संस्करण